अध्याय ४८

सद्गुरु के लक्षण

(१) श्री शेवड़े और (२) श्री सपटणेकर व श्रीमती सपटणेकर (३) संतति दान।

अध्याय प्रारम्भ करने से पूर्व किसी ने हेमाडपंत से प्रश्न किया कि साईबाबा गुरु थे या सद्गुरु? इसके उत्तर में हेमाडपंत सद्गुरु के लक्षणों का निम्नप्रकार वर्णन करते हैं।

सद्गुरु के लक्षण

जो वेद और वेदान्त तथा छः शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करके ब्रह्मविषयक मधुर व्याख्यान देने में पारंगत हो तथा जो अपने श्वासोच्छ्वास क्रियाओं पर नियंत्रण कर सहज ही मुद्राएँ लगाकर अपने शिष्यों को मंत्रोपदेश दे, निश्चित अवधि में यथोचित संख्या का जाप करने का आदेश दे, और केवल अपने वाक्चातुर्य से ही उन्हें जीवन के अंतिम ध्येय का दर्शन कराता हो तथा जिसे स्वयं आत्मसाक्षात्कार न हुआ हो, वह सद्गुरु नहीं। वरन् जो अपने आचरणों से लौकिक व पारलौकिक सुखों से विरक्ति की भावना का निर्माण कर हमें आत्मानुभूति का रसास्वादन करा दे तथा जो अपने शिष्यों को क्रियात्मक और प्रत्यक्ष ज्ञान (आत्मानुभूति) करा दे, उसे ही सद्गुरु कहते हैं। जो स्वयं ही आत्मसाक्षात्कार से वंचित हैं, वे भला अपने अनुयायियों को किस प्रकार अनुभूति करा सकते हैं? सद्गुरु स्वप्न में भी अपने शिष्य से कोई लाभ या सेवा-शुश्रुषा की लालसा नहीं करते, वरन् स्वयं उनकी सेवा करने को ही उद्यत रहते हैं। उन्हें यह कभी भी भान नहीं होता है कि मैं कोई महान् हूँ और मेरा शिष्य मुझसे तुच्छ है, अपितु उसे अपने ही सदृश (या ब्रह्मस्वरूप) समझा करते हैं। सद्गुरु की मुख्य विशेषता यही है कि उनके हृदय

में सदैव परम शांति विद्यमान रहती है। वे कभी अस्थिर या अशांत नहीं होते और न उन्हें अपने ज्ञान का ही लेशमात्र गर्व होता है। उनके लिए राजा-रंक, स्वर्ग-अपवर्ग सब एक ही समान हैं।

हेमाडपंत कहते हैं कि मुझे गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप श्री साईबाबा सदृश सद्गुरु के चरणों की प्राप्ति तथा उनके कृपापात्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे अपनी युवावस्था में चिलम के अतिरिक्त कुछ संग्रह न किया करते थे। न उनके बाल-बच्चे तथा मित्र थे, न घरबार था और न उन्हें किसी प्रकार का आश्रय प्राप्त था। १८ वर्ष की अवस्था से ही उनका मनोनिग्रह बड़ा विलक्षण था। वे निर्भय होकर निर्जन स्थानों में विचरण करते एवं सदा आत्मलीन रहते थे। उनका कथन था कि **मैं सदा भक्त के पराधीन रहता हूँ।** जब वे शरीर में थे, उस समय भक्तों ने जो अनुभव किये, उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् आज भी जो उनके शरणागत हो चुके हैं, उन्हें उसी प्रकार के अनुभव होते हैं। भक्तों को तो केवल इतना ही यथेष्ट है कि यदि वे अपने हृदय को भक्ति और विश्वास का दीपक बनाकर उसमें प्रेम की ज्योति प्रज्ज्वलित करें तो ज्ञानज्योति (आत्मसाक्षात्कार) स्वयं प्रकाशित हो उठेगी। **प्रेम के अभाव में शुष्क ज्ञान व्यर्थ है। ऐसा ज्ञान किसी को भी लाभप्रद नहीं हो सकता,** प्रेम के अभाव में संतोष नहीं होता। इसलिए हमारा प्रेम असीम और अटूट होना चाहिए। प्रेम की कीर्त्ति का गुणगान कौन कर सकता है, जिसकी तुलना में समस्त वस्तुएँ तुच्छ जान पड़ती हैं? प्रेमरहित पठनपाठन सब निष्फल है। प्रेमांकुर के उदय होते ही भक्ति, वैराग्य, शांति और कल्याणरूपी सम्पत्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। जब तक किसी वस्तु के लिए प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तब तक उसे प्राप्त करने की भावना ही उत्पन्न नहीं होती। इसलिए **जहाँ व्याकुलता और प्रेम है, वहाँ भगवन् स्वयं प्रकट हो जाते हैं। भाव में ही प्रेम अंतर्निहित है और वही मोक्ष का कारणीभूत है।** यदि कोई व्यक्ति कलुषित भाव से भी किसी सच्चे संत के चरण पकड़ ले तो भी यह निश्चित है कि वह

अवश्य तर जाएगा। ऐसी ही कथा नीचे दर्शाई गई है।

श्री शेवड़े

''अक्कलकोट (सोलापुर जिला) के श्री सपटणेकर वकालत का अध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनकी अपने सहपाठी श्री शेवड़े से भेंट हुई। अन्य और भी विद्यार्थी वहाँ एकत्रित हुए और सब ने अपनी-अपनी अध्ययन संबंधी योग्यता का परस्पर परीक्षण किया। प्रश्नोत्तरों से विदित हो गया कि सब से कम अध्ययन श्री शेवड़े का है और वे परीक्षा में बैठने के अयोग्य हैं। जब सब मित्रों ने मिलकर उनका उपहास किया तब शेवड़े ने कहा कि, ''यद्यपि मेरा अध्ययन अपूर्ण है तो भी मैं परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरे साईबाबा ही सबको सफलता देने वाले हैं।'' श्री सपटणेकर को यह सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्री शेवड़े से पूछा कि, ये साईबाबा कौन हैं, जिनका तुम इतना गुणगान कर रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया कि 'वे एक फकीर हैं, जो शिरडी (अहमदनगर) की एक मस्जिद में निवास करते हैं। वे महान् सत्पुरुष हैं। ऐसे अन्य संत भी हो सकते हैं, परन्तु वे उनसे अद्वितीय हैं। **जब तक पूर्ण जन्म के शुभ संस्कार संचित न हों, तब तक उनसे भेंट होना दुर्लभ है।** मेरी तो उन पर पूर्ण श्रद्धा है। उनके श्रीमुख से निकले वचन कभी असत्य नहीं होते। उन्होंने ही मुझे विश्वास दिलाया है कि मैं अगले वर्ष परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरा भी अटल विश्वास है कि मैं उनकी कृपा से परीक्षा में अवश्य ही सफलता पाऊँगा।' श्री सपटणेकर को अपने मित्र के ऐसे विश्वास पर हँसी आ गई और साथ ही श्री साईबाबा का भी उन्होंने उपहास किया। भविष्य में जब शेवड़े दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए। तब सपटणेकर को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्री सपटणेकर

श्री सपटणेकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् अक्कलकोट में रहने लगे और वहीं उन्होंने अपनी वकालत प्रारम्भ कर दी। दस वर्षों

के पश्चात् सन् १९१३ में उनके इकलौते पुत्र की गले की बीमारी से मृत्यु हो गई, जिससे उनका हृदय विचलित हो उठा। मानसिक शांति प्राप्त करने हेतु उन्होंने पंढरपुर, गाणगापुर और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की परन्तु उनकी अशांति पूर्ववत् ही बनी रही। उन्होंने वेदांत का भी श्रवण किया, परन्तु वह भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। अचानक उन्हें शेवड़े के वचनों तथा श्री साईबाबा के प्रति उनके विश्वास की स्मृति हो आई और उन्होंने विचार किया कि मुझे भी शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करना चाहिए। वे अपने छोटे भाई पंडितराव के साथ शिरडी आए। बाबा के दर्शन कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। जब उन्होंने समीप जाकर नमस्कार करके शुद्ध भावना से श्रीफल भेंट किया तो बाबा तुरन्त क्रोधित हो उठे और बोले कि, ''यहाँ से निकल जाओ।'' सपटणेकर का सिर झुक गया और वे कुछ हटकर पीछे बैठ गए। वे यह जानना चाहते थे कि किस प्रकार उनके समक्ष उपस्थित होना चाहिए। किसी ने उन्हें बाला शिम्पी का नाम सुझा दिया। सपटणेकर उनके पास गए और उनसे सहायता करने की प्रार्थना करने लगे। तब वे दोनों बाबा का एक चित्र मोल लेकर मस्जिद को आए। बाला शिम्पी ने अपने हाथ में चित्र लेकर बाबा के हाथ में दे दिया और पूछा कि यह किसका चित्र है? बाबा ने सपटणेकर की ओर संकेत कर कहा कि ,''यह तो मेरे यार का है।'' यह कहकर वे हँसने लगे और साथ ही सब भक्त मंडली भी हँसने लगी। बाला शिम्पी के संकेत पर जब सपटणेकर उन्हें प्रणाम करने लगे तो वे पुनः चिल्ला पड़े कि ''बाहर निकलो''। सपटणेकर की समझ मे नहीं आता था कि वे क्या करें। तब वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बाबा के सामने बैठ गए, परन्तु बाबा ने उन्हें तुरन्त ही बाहर निकलने की आज्ञा दी। वे दोनों बहुत ही निराश हुए। उनकी आज्ञा कौन टाल सकता था? आखिर सपटणेकर खिन्न-हृदय शिरडी से वापस चले आए। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की कि, ''हे साई! मैं आपसे दया की भिक्षा माँगता हूँ। कम से कम

इतना ही आश्वासन दे दीजिये कि मुझे भविष्य में कभी न कभी आपके श्री दर्शनों की अनुमति मिलेगी।''

श्रीमती सपटणेकर

एक वर्ष बीत गया, फिर भी उनके मन में शांति न आई। वे गाणगापुर गए, जहाँ उनके मन में अशांति और अधिक बढ़ गई। अत: वे माढेगाँव विश्राम के लिये पहुँचे और वहाँ से ही काशी जाने का निश्चय किया। प्रस्थान करने के दो दिन पूर्व उनकी पत्नी को स्वप्न हुआ कि वह स्वप्न में एक गागर ले लक्कड़शाह के कुएँ पर जल भरने जा रही है। वहाँ नीम के नीचे एक फकीर बैठा है। सिर पर एक कपड़ा बँधा हुआ है। फकीर उसके पास आकर कहने लगा कि, ''मेरी प्रिय बच्ची! तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठा रही हो? मैं तुम्हारी गागर निर्मल जल से भर देता हूँ।'' तब फकीर के भय से वह खाली गागर लेकर ही लौट आई। फकीर भी उसके पीछे-पीछे चला आया। इतने में ही घबराहट में उसकी निद्रा भंग हो गई और उसने आँखें खोल दीं। यह स्वप्न उसने अपने पति को सुनाया। उन्होंने इसे एक शुभ शकुन जाना और वे दोनों शिरडी को रवाना हो गए। जब वे मस्जिद पहुँचे तो बाबा वहाँ उपस्थित न थे। वे लेण्डी बाग गए हुये थे। उनके लौटने की प्रतीक्षा में वे वहीं बैठे रहे। जब बाबा लौटे तो उन्हें देखकर उनकी पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में जिस फकीर के उसने दर्शन किये थे, उनकी आकृति बाबा से बिल्कुल मिलती-जुलती थी। उसने अति आदरसहित बाबा को प्रणाम किया और वहीं बैठे-बैठे उन्हें निहारने लगी। उसका विनम्र स्वभाव देखकर बाबा अत्यन्त प्रसन्न हो गए। अपनी पद्धति के अनुसार वे एक तीसरे व्यक्ति को अपने अनोखे ढंग से एक कहानी सुनाने लगे - ''मेरे हाथ, उदर, शरीर तथा कमर में बहुत दिनों से दर्द हुआ करता था। मैंने अनेक उपचार किये, परन्तु मुझे कोई लाभ न पहुँचा। मैं औषधियों से ऊब उठा, क्योंकि मुझे उनसे कोई लाभ न हो रहा था, परन्तु अब मुझे

बड़ा अचम्भा हो रहा है कि मेरी समस्त पीड़ायें एकदम ही जाती रहीं।'' यद्यपि किसी का नाम नहीं लिया गया था, परन्तु यह चर्चा स्वयं श्रीमती सपटणेकर की थी। उनकी पीड़ा जैसा बाबा ने अभी कहा, सर्वथा मिट गई और वे अत्यन्त प्रसन्न हो गईं।

संतति-दान

तब श्री सपटणेकर दर्शन के लिए आगे बढ़े, परन्तु उनका पूर्वोक्त वचनों से ही स्वागत हुआ कि ''बाहर निकल जाओ।'' इस बार वे बहुत धैर्य और नम्रता धारण करके आए थे। उन्होंने कहा कि पिछले कर्मों के कारण ही बाबा मुझसे अप्रसन्न हैं और उन्होंने अपना चरित्र सुधारने का और बाबा से एकान्त में भेंट करके अपने पिछले कर्मों की क्षमा माँगने का निश्चय किया। उन्होंने वैसा ही किया भी और अब जब उन्होंने अपना मस्तक उनके श्रीचरणों पर रखा तो बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अभी सपटणेकर उनके चरण दबाते हुए बैठे ही थे कि इतने में एक गड़ेरिन आई और बाबा की कमर दबाने लगी। तब वे सदैव की भाँति एक बनिये की कहानी सुनाने लगे। जब उन्होंने उसके जीवन के अनेकों परिवर्त्तन तथा उसके इकलौते पुत्र की मृत्यु का हाल सुनाया तो सपटणेकर को अत्यंत आश्चर्य हुआ कि जो कथा वे सुना रहे हैं, वह तो मेरी ही है। उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ कि उनको मेरे जीवन की प्रत्येक बात का पता कैसे चल गया? अब उन्हें विदित हो गया कि बाबा अन्तर्यामी हैं और सबके हृदय का पूरा-पूरा रहस्य जानते हैं। यह विचार उनके मन में आया ही था कि गड़ेरिन से वार्त्तालाप चालू रखते हुए बाबा सपटणेकर की ओर संकेत कर कहने लगे कि, ''यह भला आदमी मुझ पर दोषारोपण करता है कि मैंने ही इसके पुत्र को मार डाला है। क्या मैं लोगों के बच्चों के प्राण-हरण करता हूँ? फिर ये महाशय मस्जिद में आकर अब क्यों चीख-पुकार मचाते हैं? अब मैं एक काम करूँगा। अब मैं उसी बालक को फिर से इनकी पत्नी के गर्भ में ला दूँगा।'' - ऐसा कहकर बाबा ने अपना वरद्हस्त

सपटणेकर के सिर पर रखा और उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि, **''ये चरण अधिक पुरातन तथा पवित्र हैं। जब तुम चिंता से मुक्त होकर मुझ पर पूरा विश्वास करोगे, तभी तुम्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी।''** सपटणेकर का हृदय गद्‌गद हो उठा। तब अश्रुधारा से उनके चरण धोकर वे अपने निवासस्थान पर लौट आए और फिर पूजन की तैयारी कर नैवेद्य आदि लेकर वे सपत्नीक मस्जिद में आए। वे इसी प्रकार नित्य नैवेद्य चढ़ाते और बाबा से प्रसाद ग्रहण करते रहे। मस्जिद में अपार भीड़ होते हुए भी वे वहाँ जाकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते थे। एक दूसरे से सिर टकराते देखकर बाबा ने उनसे कहा कि, **''प्रेम तथा श्रद्धा द्वारा किया हुआ एक नमस्कार ही मुझे पर्याप्त है।''** उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी का उत्सव देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन्हें बाबा ने पांडुरंग के रूप में दर्शन दिये।

जब वे दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने विचार किया कि पहले दक्षिणा में बाबा को एक रुपया दूँगा। यदि उन्होंने और माँगे तो अस्वीकार करने के बजाए एक रुपया और भेंट में चढ़ा दूँगा। फिर भी यात्रा कि लिए शेष द्रव्यराशि पर्याप्त होगी। जब उन्होंने मस्जिद जाकर बाबा को एक रुपया दक्षिणा दी तो बाबा ने भी उनकी इच्छा जानकर एक रुपया उनसे और माँगा। जब सपटणेकर ने उसे सहर्ष दे दिया तो बाबा ने भी उन्हें आशीर्वाद देकर कहा कि, ''यह श्रीफल ले जाओ और इसे अपनी पत्नी की गोद में रखकर निश्चिंत होकर घर जाओ।'' उन्होंने वैसा ही किया और एक वर्ष के पश्चात् ही उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। आठ मास का शिशु लेकर वह दम्पति फिर शिरडी को आए और बाबा के चरणों पर बालक को रखकर फिर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि, ''हे श्रीसाईनाथ! आपके ऋण हम किस प्रकार चुका सकेंगे? आपके श्रीचरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है। हम दीनों पर आप सदैव कृपा करते रहियेगा, क्योंकि हमारे मन में सोते-जागते हर समय न जाने क्या-क्या संकल्प-विकल्प उठा करते हैं। आपके भजन में ही हमारा मन

लीन हो जाए, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।''

उस पुत्र का नाम 'मुरलीधर' रखा गया। बाद में उनके दो पुत्र (भास्कर और दिनकर) और उत्पन्न हुए। इस प्रकार सपटणेकर दम्पति को अनुभव हो गया कि बाबा के वचन कभी असत्य और अपूर्ण नहीं होते।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥